पाप

जिंदर

पाप

तुझे मेरी ज़िंदगी का एक पक्ष ही क्यों बताया है?

https://www.hindiadda.com/paap/

और भी बहुत कुछ है।

हाँ। हाँ।

मैं ब्राह्मणों के उच्च कुल से संबंध रखती हूँ।

हाँ। हाँ।

है। है।

यह भी एक खेल है।

तू क्या जाने मेरे दुखों को। कोई एक दुख हो तो मैं तुझे बताऊँ। मैं ही हूँ जो यह सब कुछ सहन कर रही हूँ। मन पर भी, तन पर भी। किसी की परवाह किए बग़ैर। जो कोई कुत्ता भौंकता है, भौंकता रहे। मेरी जानती है जूती। अब मैं उसे इस पर नहीं मारती।

किसी के घर में एक मरीज़ होगा। किसी के दो। मेरे तो तीन हैं। सत्तरह वर्ष का बेटा - रोशन, जिसकी रिकवरी होने की कोई आस नहीं। मैं अच्छी तरह जानती हूँ, पर मेरे से उम्मीद का दामन छोड़ा नहीं जाता। आख़िर उसकी माँ हूँ। मैं जब सुबह उसकी तरफ देखती हूँ तो वह आगे से मुस्करा पड़ता है। मुझे उसकी इसी मुस्कराहट का आसरा है। मैं जानती हूँ कि वह बेइंतहा दुखी है। मुँह से बोलकर कुछ बता नहीं सकता। इशारा नहीं कर सकता। बस, उसे तो मुस्कराना आता है। वह भी एक बार। सिर्फ़ सुबह के समय। कई बार मुझे भ्रम सा होता है मानो वह नहीं, मैं ही मुस्करा कर उसकी तरफ देखती हूँ।

दूसरा मरीज़ मेरे सिर का साईं है। अच्छा भला था। विवाह से दो साल बाद पहले उसे दमा हो गया था, फिर शुगर हो गई। फिर अधरंग का अटैक हुआ था। तीन बीमारियों का शिकार। उसकी सरकारी नौकरी खतरे में पड़ चली थी। मैं उसके दफ़्तर में जाकर रोई-पीटी थी। बहुत ज़ोर लगाया था कि उसे रख लिया जाए। उसकी सामर्थ्य के अनुसार उसे डायरी या डिस्पैच की सीट पर लगा दिया जाए। सरकार का भी प्रॉविजन है कि यदि सरकारी नौकरी के दौरान कोई कर्मचारी अंगहीन हो जाता है तो उसे उसकी शारीरिक सामर्थ्य के अनुसार ही काम दिया जाए। पर उसका साहिब उससे किसी बात पर पहले से ही नाराज़ था। उसने उस पर तरस नहीं आया था। उसने मेरी एक नहीं चलने दी थी। मेडिकल सर्टिफिकेट को भी नकार दिया था। कहा था, "जो आदमी अपनी काया को नहीं सँभाल सकता, वह नौकरी खाक करेगा।" मैंने ये मसला यूनियन में उठाया था। आख़िर साहिब को यूनियन के आगे झुकना पड़ा था। स्वरूप

को मैं रिक्शा में बिठाकर भेज देती थी। शाम को रिक्शे पर बैठकर वह घर आ जाता था।

मैं उसे समझाती थी कि दफ़्तर जाने से उसका समय पास हो जाएगा। यूँ ही व्यर्थ की सोचों से छुटकारा मिलेगा। लेकिन शीघ्र ही वह दिल छोड़ बैठा था। उसने एक ही बात पकड़ ली थी कि उससे अब नौकरी नहीं हो सकेगी। उससे लोगों की दयाभरी नज़रों का सामना नहीं होता था। उसकी नौकरी आठ साल और तीन महीनों की हुई थी। इसी कारण पेंशन नहीं लगी थी। मैं स्वयं सरकारी नौकरी कर रही हूँ। मुझे मायके और ससुराल वालों की ओर से कोई सहारा नहीं था। मैंने और स्वरूप ने घरवालों के विरुद्ध जाकर विवाह जो करवाया था। दोनों घरों द्वारा हमें बेदख़ल किया हुआ है।

अधरंग के अटैक के बाद कोई भी उसकी खैर-ख़बर लेने नहीं आया था। उनके लिए हम जैसे मर खप गए थे। उस वक़्त तो नहीं, अब वह इस बात को महसूस करता था। मेरी जिम्मेदारियाँ बढ़ गई थीं। मैं बाप-बेटे को सँभालती थी। दफ़्तर जाती थी। मैं जब भी उसके सामने जाती, हँस-हँसकर बातें करती थी। मैं उसे भी हँसाने की कोशिश करती थी। लेकिन वह तो मन पर कुछ अधिक ही बोझ डाल बैठा था। डिप्रैशन में आया वह मुझे यहाँ तक कह देता था, "हमारे धार्मिक ग्रंथों में कहा गया है कि स्त्री की रक्षा करता हुआ आदमी अपनी औलाद, आचरण, कुल, आत्मा और धर्म - इन सबकी रक्षा करता है... मैं तो किसी योग्य नहीं रहा। न मैं, न मेरा बेटा। हम बाप-बेटे को पिंगलवाड़े फेंक आ। रोज़-रोज़ का झंझट खत्म होगा। उस जीवन का क्या फ़ायदा जो अपना आप भी न सँभाल सके। हमारे कारण तेरी ज़िंदगी नर्क बनी हुई है।

तीसरी मरीज़ मैं स्वयं हूँ।

हाँ। हाँ।

पाप!

पुण्य!

फ़र्ज़!

यह तू क्या पापों, पुण्यों और फ़र्ज़ों की कथा छेड़ बैठा है। यह मुझसे पूछ कि पाप क्या होते हैं? पुण्य क्या होते हैं? फ़र्ज़ क्या होते हैं? एक बार मैं स्वयं इनमें फँस गई थी। उलझ गई थी। पर जल्द ही इनसे मुक्त हो गई थी। डलहौजी से वापसी के उपरांत मुझे

इस बात का ज्ञान हुआ था कि फ़र्ज़ों से बड़ा कुछ नहीं। मैं अपने कर्तव्यों से पीछे नहीं हटी हूँ। कुर्बानियाँ देनी पड़ी हैं।

हाँ। हाँ।

फ़र्ज़। फ़र्ज़।

फ़र्ज़ बड़े हैं।

ले, मेरी कथा यहाँ से सुन ले।

मैं गोपाल सर के साथ पठानकोट के दौरे पर गई थी। वहीं से हम डलहौजी चले गए थे।

डलहौजी आकर अचानक मुझे 'पाप' के चक्कर ने घेर लिया था जहाँ से मुझे उस वक़्त बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं मिला था। इसी के शिकंजे में फँसी मैं सवेर की सैर करके वापस आई तो गोपाल अख़बार पढ़ने में व्यस्त था। उसने पालथी मार रखी थी। उसे देखते ही मैं पल भर सब कुछ भूल गई थी। उसके चेहरे पर थकावट, ग्लानि और अफ़सरी के कोई भाव नहीं थे। दफ़्तरी अफ़सर के उलट यह उसका भिन्न रूप था जिसका मैं तीन दिनों से आनंद ले रही थी। मैं झूठ क्यों बोलूँ। जब मैंने आनंद लिया है तो यही कहूँगी न। आख़िर मैं भी औरत हूँ। मेरी भी शारीरिक ज़रूरतें हैं। आर्थिक ज़रूरतें भी हैं। कभी शारीरिक ज़रूरतें प्रथम होती हैं, कभी आर्थिक। फिर यदि मर्द अपनी पसंद का मिल जाए तो क्या कहने। मैं उसे अपना सब कुछ दे सकती हूँ। कोई दुराव-छिपाव नहीं रखती। मुझसे छिपकर नहीं जिया जाता। यहाँ आते ही गोपाल ने मुझसे कहा था, "हम इंज्वाय करने आए हैं। इंज्वाय ही करना है। किसी साले की परवाह नहीं करनी।" उसका यही रूप मुझे आकर्षित करता है। बार-बार। मैं उसे चोर आँख से देखती हूँ। सीधी आँख से भी।

मैं पहाड़ी के चारों तरफ करीब आधा चक्कर लगाकर रेलिंग पर बाहें टिका कर खड़ी हो गई थी। मेरे सम्मुख प्रकृति का अपार सौंदर्य बिखरा पड़ा था। पेड़। पहाड़। धुंध। पानी। हवा। पंछी। मैं इसमें खोती ही चली गई थी। अचानक मुझे लगा था कि मैं अकेली हूँ। बिलकुल अकेली। मैं उस अवस्था में पहुँच गई थी जिसे संत-महापुरुष 'शून्य' की अवस्था कहते हैं। मुझे अपने आप की कोई सुधबुध नहीं रही थी। मेरी चेतना उस वक्त वापस लौटी थी जब किसी कार ड्राइवर ने बहुत ही ऊँची आवाज़ में हॉर्न दिया

था। फिर मंदिर से आता पुजारी का स्वर मेरे कानों में पड़ा था, "प्राणी अकेला ही पैदा होता है।

अकेला ही मरता है। अकेला ही पुण्य भोगता है और अकेला ही पाप भोगता है...।" आगे के शब्द मुझे सुनाई नहीं दिए थे। मैं तो 'पाप' शब्द में उलझ गई थी। वह भी ज़िंदगी में पहली बार। 'यह जो मैं कर रही हूँ, यह तो किसी पाप में नहीं आता।' मेरे मन ने यही कहा था। 'यह जो कुछ हो रहा है, इसकी मुझे कोई समझ नहीं आती। यह मैं नहीं करती, मुझसे कोई दूसरा ही करवाये जाता है। यह कहाँ मेरे हाथ में है, मेरे वश में है। शायद पहले दिन से ही मेरे हाथ और वश में नहीं रहा। मैं गर्दन झुकाए आगे चली जा रही थी। मेरे सामने स्वरूप का चेहरा कई रूपों में घूमने लगा था। मैं क्या कर रही हूँ, कहाँ जाती हूँ, इसका पता उसे भी है। पर उसने इस बारे में कभी कुछ नहीं कहा। कभी कभार उसकी दाईं आँख बड़ी तेज़ी से घूमती है। मुझे इससे डर लगता है। रात में जब वह अपना अधरंग का मारा हाथ मेरे पेट पर रखता है तो मेरा रोना निकल जाता है। पहले वह रोया करता था। अब मैं रोती हूँ। वह मेरे सामने रोता था। मैं दूसरी तरफ मुँह घुमाकर आँखें पोंछ लेती हूँ।

मंदिर के पुजारी के प्रवचनों ने किस मोड़ पर ला खड़ा किया था कि मैं 'पाप' शब्द में उलझती ही चली गई थी। मैंने तो अपने परिवार को बचाने के लिए अपने तन की बलि भी दे दी थी। मैंने अपने जिस्म को हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया था। अभी भी इस्तेमाल कर रही हूँ। मुझे पता ही नहीं रहा था कि मैंने पहाड़ी के ऊपर से कितने चक्कर लगाए थे। मैं बिलकुल रुकी नहीं थी। थकी नहीं थी। गर्दन झुकाए चली जा रही थी। फिर मुझे इस बात का अहसास हुआ था कि मै अकेली नहीं थी। मेरे साथ तो स्वरूप था। रोशन था। मेरे संग विचार-विमर्श करते हुए। मेरी बातों का हुंकारा भरते हुए। मैं स्वरूप से पूछना चाहती थी कि पाप क्या है? फ़र्ज़ क्या हैं? क्या यह वो पाप है जो सारे धार्मिक ग्रंथ बताते हैं? मेरे सिर में कुछ होने लगा था। मेरा मन चीख-चीखकर कहने को हुआ था कि यह पाप नहीं है। फ़र्ज़ मुझसे यह सब करवा रहे हैं। मैं मुँह से कुछ बोलने ही जा रही थी कि मुझे भ्रम-सा पड़ा था मानो टैक्सी स्टैंड के पास कुलतार सिद्धू खड़ा हो।

बिलकुल उस जैसी ही भारी पीठ थी। मैं डर गई थी। जब तक उसकी पोस्टिंग यहाँ रही, मुझे उससे डर ही लगता रहा था। जैसे जैसे मैं पैर आगे बढ़ाती थी, वैसे वैसे भ्रम यकीन में बदलता चला गया था। सतगुरुओं की मेहर हुई, वह कोई और ही निकला था। था हू-ब-हू उस जैसा ही। कमीना, घटिया कुलतार सिद्धू। डुप्लीकेट सिद्धू। साला...। सुबह-शाम हाज़िरी चैक करता, करवाता था। सारे स्टॉफ को सूली पर टाँगें

रखता था। मेरे मन से अभी तक उसका डर निकला नहीं था। उसके समय में मैंने बहुत बुरे दिन बिताए थे। बहुत अच्छे दिन भी। मैं पंद्रह-बीस दिन बाद दफ़्तर हो आती थी। सुखजीत अपनी सीट के साथ-साथ मेरी सीट का काम भी करता था। मेरे आने से पहले ही वह फाइलों की नोटिंग टाइप करवाकर रखता था। मुझे तो जाकर दस्तख़्त करने होते थे ताकि मेरी हाज़िरी लगती रहे। कुलतार का दबका ही ऐसा था कि दफ़्तर में कोई चूँ नहीं कर सकता था। मुझे किसी ने क्या कहना था। स्वरूप और रोशन खुश थे। उनकी ज़रूरतें समय से पूरी हो रही थीं। कुलतार ने स्वरूप के साथ भी आत्मीयता बढ़ा ली थी। वह हफ़्ते-दस दिन बाद घर आ जाता था। व्हिस्की की बोतल और मुर्गा लेकर। वह ऐसे आता था मानो अपने घर आया हो। कभी कभी मुझे उसपर बहुत मोह आता। कभी कभी उससे नफ़रत भी होती जब वह अपना हक जताने लग जाता। उसमें से अफ़सरी की बू न जाती। यदि मैं रसोई में खड़ी होती तो वह मुझे पीछे से आलिंगन में ले लेता और कहता, "मेरी मेनका।" चूम चूमकर बुरा हाल कर देता। स्वरूप के पास बैठकर उसी का हो जाता। शराब स्वरूप की कमजोरी थी। वे दोनों बैठे पीते रहते।

मुझे बार बार पुकारते रहते। खा-पीकर कुलतार बैठक में पड़े बैड पर आ पसरता। मैं स्वरूप, रोशन और गुड्डी को सोया समझ कर उसके पास आ जाती। रात भर उसके पास रहती। स्वरूप बार-बार खाँसता। कभी मुझे उसकी यह खाँसी दमे के कारण लगती, कभी लगता कि वह जानबूझ कर खाँस रहा है। मैं परेशान होती। मैं कुलतार से कहती कि वह मुझे बाहर बुला लिया करे। मैं आ जाया करूँगी। वह मेरे घर को ज्यादा सुरक्षित समझता। सुबह मैं स्वरूप से नज़रें न मिला पाती। मैं सोचती कि वह मेरे बारे में क्या सोचता होगा। यद्यपि अधरंग के कारण उसका बायाँ हिस्सा जड़ हो गया था, पर उसकी तेज़ी से घूमती दाईं आँख मेरा पीछा कर रही होती। मेरी बड़ी परेशानी का कारण भी यही आँख थी। फिर कुलतार मेरे पीछे ही पड़ गया था कि मैं उसके बच्चे को जन्म दूँ। मैंने उसे बहुत समझाया था कि मेरे तो पहले ही बेटा और बेटी हैं। मुझे किसी अन्य इशु की ज़रूरत नहीं। वह बहुत जिद्दी था। मैं दफ़्तर जाती तो वह कहता कि मुझे दफ्तर आने की ज़रूरत ही नहीं। बस, महीने बाद आया करूँ। एक बार ही रजिस्टर पर हाज़िरी लगा दिया करूँ। मुझे घर बैठी को तनख्वाह मिल जाएगी। फिर उसका घर में आना बढ़ गया था। मुझसे यही कहता था कि मुझे लड़का चाहिए। कोई उससे पूछे कि इसकी गारंटी मैं कैसे दे सकती हूँ।

एक बार तो मैंने यहाँ तक सोच लिया था कि उसे या तो पुलिस से पकड़वा दूँ या उसकी शिकायत सेक्रेटरी के पास करूँ। इस संबंध में मैंने अपने कुलीग जगदीश बजाज से सलाह की थी। उसने मुझे समझाया था, "देखना मैडम, यह गलती न कर बैठना।

अफ़सर के विरुद्ध जल्दी कोई कार्रवाई नहीं होती। तुम्हें नौकरी करनी कठिन हो जाएगी। ऐसी गलती मेरी एक रिश्तेदार कुलवंत ने की थी। एक पी.सी.एस. अफ़सर था। उसने कुलवंत से भद्दा मजाक किया था। कुलवंत भावुक थी। उसे नई नई नौकरी मिली थी। वह माइंड कर गई। उसने पी.सी.एस. अफ़सर की शिकायत की। अफ़सर के चमचों ने राह में ही शिकायत रुकवा दी। अफ़सर ने कुलवंत को अपने कमरे में बुलाया। बहुत अपमानित किया। दस लोगों के सामने। सस्पेंशन ऑडर थमाते हुए कहा, "तुमने सेक्रेटरी साहिब के डी.ओ. का समय से जवाब नहीं दिया। अपनी गलती मानने की बजाय उलटा मेरी ही बुराई करनी शुरू कर दी। मुझे मालूम है कि तुम ऐसा नहीं कर सकते। तुम्हारे पीछे किसी दूसरे का दिमाग काम कर रहा है। उसे भी खोज लूँगा। पर पहले तुम्हें सबक सिखाने की ज़रूरत है। तुम्हें इतनी सजा तो मिलनी ही चाहिए।" दफ़्तर के स्टाफ ने अनुनय-विनय की। कहा था, "इस बेचारी का तो अभी प्रोबेशनरी पीरियड भी खत्म नहीं हुआ।" अफ़सर ने फिर अपनी टाँग ऊपर रखी थी। कुलवंत से माफ़ीनामा लिखवा कर ऑडर कैंसिल कर दिए थे। मुझे अन्य कई अफ़सरों के चेहरे दिखाई दिए थे। सभी एक जैसे होते हैं। ये सबोर्डिनेट्स की समस्याओं की ओर अधिक ध्यान नहीं देते। बात आई गई कर देते हैं।"

मैं अपने इस 'पाप' के विषय में गोपाल के विचार जानना चाहती थी। मैं पूछने ही लगी थी कि उसने अख़बार को एक तरफ फेंक कर मुझे बाँहों में कस लिया था। मेरे कान के पास अपना मुँह ले जाकर कहा था, "हरकिरन।"

"हरकिरन नहीं सर...।" मैंने उसे आगे बढ़ने से पहले ही झाड़ दिया था।

"सर किरन।"

"नहीं, अकेली सर।"

"यार तू पहले मेरी बात तो सुन ले।"

"पहले सर कहो।"

"सर, हुक्म फरमाओ।"

"इन दिनों मैं जो कर रही हूँ, क्या इसे पाप कहा जा सकता है?"

उसके हाथों की पकड़ एकदम ढीली पड़ गई थी।

उसने मुझे बैड पर बिठाते हुए बताया था, "यह टाइम्स ऑफ इंडिया में ख़बर छपी है कि शराब और औरत करप्शन में नहीं आते। क्या तर्क दिया गया? जब कोई किसी के घर में जाता है तो उसे चाय या कॉफी पिलाई जाती है। ये चीज़ें करप्शन में नहीं आतीं।"

"मेरी बात का तो यह जवाब नहीं।" मैंने खीझकर कहा था।

उसने कहा था, "मैं इसे पाप नहीं मानता। बता, तूने इन्जॉय नहीं किया? जहाँ इन्जॉय होगा, वहाँ पाप नहीं होगा।"

मैंने उससे अख़बार लेकर पढ़ी थी। हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज शामीत मुखर्जी के वकील दिनेश माथुर ने सुप्रीम कोर्ट में दलील दी थी कि यदि कोई साइल, औरत और शराब के साथ इंटरटेन करता है तो इसे आर्थिक लाभ नहीं माना जा सकता। न ही इसे करप्शन कहा जा सकता है। उसने जज एस.के. अग्रवाल को यह मानने के लिए दलील दी कि 'प्रीवेंशन ऑफ करप्शन एक्ट' के अधीन, सिर्फ़ पैसा लेने पर ही करप्शन होता है। मान लो कि कोई व्यक्ति किसी मित्र के घर जाता है। वह उसे चाय या कॉफी पिलाता है तो इससे उसे कोई आर्थिक लाभ नहीं होता।"

गोपाल मेरी ओर देखकर मंद मंद मुस्कराया था। फिर पता नहीं उसके मन में क्या आया था कि वह खिलखिला कर हँसा था। मुझे लगा था कि यह उसकी पुरुषवादी हँसी थी। औरत पर विजय की हँसी। मैं परेशानी महसूस करते हुए उठ खड़ी हुई थी। वह मेरा बॉस था। बाद में मर्द। अगर वह पहले मर्द होता तो मैं उसे इस जीत का मज़ा चखाती। बॉस से अधिक तकरार नहीं चलती। अच्छा भला बर्ताव करते करते इनके अंदर से अफ़सरी बोलने लग जाती है। ये मेरे जैसी को घटिया शै समझने लग जाते हैं। ये वही हैं जो बाहर पाँच कदम भी संग चलने को तैयार नहीं होते। बंद कमरे में ये वो कुछ करते हैं जो कि एक वेश्या के साथ भी नहीं किया जा सकता।

मुझे लगा था कि इस मसले पर उसकी सोच भी बाकी मर्दों जैसी ही थी।

मैं बाथरूम में घुसी ही थी कि गोपाल ने ठक-ठक की आवाज़ की थी। मैंने अनसुना कर दिया था। मैंने पहले ही अंदर से कुंडी लगा ली थी। मुझे गुस्सा आया था कि मुझे बार बार नंगी देखकर इसका जी क्यों नहीं भरता। इन तीन दिनों में मैं उसके सामने कितनी बार नंगी हुई थी।

हाँ। हाँ।

गोपाल।

गोपाल मेरा बॉस है।

गोपाल सर को इस दफ़्तर में आए महीनाभर हुआ था। वह हँसमुख, खुले दिल वाला और मिलनसार है। बेधड़क होकर बातें करता है। कोई गुस्सा करे तो किए जाए। किसी के साथ अधिक मोह-लिहाज नहीं रखता। काम के प्रति उसकी ईमेज एक सख़्त अफ़सर वाली है।

उससे पहली मुलाकात में तल्ख़ी पैदा हो गई थी।

मैं नोटिंग पर उसके हस्ताक्षर करवाने के लिए गई थी तो उसने बैठने का संकेत किया था। पूछा था कि पानी पीना पसंद करूँगी या चाय। कोई सहायक या ऑडीटर उसके पास जाता तो वह चाय-पानी अवश्य पूछता था। वह स्वयं चाय पीने का बहुत शौकीन था। मैंन इनकार में सिर हिलाया था। उसके टेबल पर से पेपरवेट उठाकर घुमाने लग पड़ी थी। वह मंद मंद मुस्कराता रहा था, "हर इनसान में उसका बालपन बैठा होता है।" मैंने उसकी इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। उसने घंटी बजाई थी। चपरासी हरदयाल को दो कप चाय लाने के लिए कहा था। फिर वह केस हिस्ट्री पूछने लगा था। उसने पहले पेज पर ही कई गलतियाँ ढूँढ़ ली थीं।

पहला प्रभाव ही खराब पड़ा था। हैड ऑफिस से बार बार फोन आ रहे थे कि केस तैयार करके जल्दी भेजो। मैंने तो पिछले कई वर्षों से हस्ताक्षर करने के बग़ैर कोई दूसरा काम किया ही नहीं था। मैं तो काम करना ही भूल गई थी। जब तक अग्रवाल साहब रहे, मैं तो न के बराबर दफ़्तर गई थी। उन दिनों रोशन भी बैड से नीचे गिर पड़ा था। उसके माथे पर पाँच-सात टाँके लगे थे। दाईं कलाई का मांस फट गया था। स्वरूप दमे के कारण सारी सारी रात खाँसता रहता था। अब सारा दिन बैड पर पड़े पड़े छत को ही घूरता रहता था। दफ़्तर में सख़्ती चल रही थी। फरलो करना बंद हो गया था। सुपरिटेंडेंट की सुर बदल गई थी। उसने हुक्म सुनाया था, "अगर तुम गए तो अपने रिस्क पर जाना।" मैं परेशान थी। मैं सोचने लग पड़ी थी कि मैं जो खेल खेल रही हूँ, यह कितनी देर और चलेगी?

क्या कोई अपने बच्चे और पति की खातिर यहाँ तक गिर सकता है? मुझे इन गहराइयों में से निकालने वाला कोई नहीं था। इन्हीं सब में उलझी हुई ने यह केस तैयार किया था। बैठी मैं दफ़्तर होती थी, ध्यान मेरा रोशन की ओर होता था।

चाय का कप खत्म होते ही मैं 'सॉरी' कहकर उठ खडी हुई थी।

उसने अचानक कुछ याद आ जाने के लहजे में कहा था, "बैठो, तुम्हारे लिए एक बुरी ख़बर है।"

"सर क्या?" मैंने उसके करीब होते हुए पूछा था। बुरी ख़बर ने मेरा सिर घुमा दिया था। अवश्य ही कोई बात थी।

"तुम बैठो तो सही।" उसने सीधे ही मेरे मुँह की ओर देखते हुए कहा था।

मुझसे बैठा कहाँ जाना था। मैंने उतावली में पूछा था तो उसने बताया था, "तुम्हारे लुधियाना के ऑडर हो गए।"

"इट्स बैड न्यूज़।" मेरे मुँह से निकला था। मुझे एकदम लगा था कि अग्रवाल साहिब ने जाते जाते उसके कानों में कुछ कहा होगा। अगले पलों में मैंने अपने आप को थोड़ा सँभाल लिया था। कहा था, "आपके होते कुछ नहीं हो सकता। आप डी.ओ. लिख दो कि स्टाफ की शॉर्टेज होने के कारण हरकिरन को रिलीव नहीं किया जा सकता।"

उसने सख़्ती से कहा था, "सब कुछ अपनी मर्जी से नहीं होता। डायरेक्टर साहिब बहुत सख़्त है। उनका ससुर चीफ़ सेक्रेट्री लगा हुआ है। वह तो उनकी भी सिफारिश नहीं मानते। तुम और हम कौन हैं। तुम्हें ऑडर ओबे करने पड़ेंगे।"

मैं दुबारा विनती करती इससे पहले ही उसने मेरी हिस्ट्री शीट खोल ली थी। मेरी बदली तीन बार पहले भी रुक चुकी थी। दो बार तो हैड ऑफिस से डी.ओ. आया था कि हरकिरन को तुरंत फारिग करके लुधियाना भेजा जाए। तीनों बार मैं बच गई थी या मुझे बचा लिया गया था।

"शायद आपको मेरे घरेलू हालात की जानकारी नहीं। मेरा बड़ा बेटा रोशन अबनॉर्मल है। छोटे होते ही उसके सिर में चोट लग गई थी। फिर उसका विकास उस गति से नहीं हुआ, जिस गति से एक आम बच्चे का हुआ करता है। वह उठकर बैठ नहीं सकता। वह खाने को नहीं माँगता। मुझे उसके खाने-पीने के समय का पता है। बेटे को मैं खुद ही नहलाती हूँ। कपड़े बदलती हूँ। मेरे हसबैंड को कई साल पहले अधरंग हो गया था। उसका बायाँ हिस्सा बिलकुल काम नहीं करता। ऊपर से दमा के मरीज़ भी हैं। मेरे बग़ैर उन्हें कोई भी सँभालने वाला नहीं है। मेरी बेटी पाँच साल की है। लुधियाना से मैं रोज़ाना वापस नहीं आ सकती। आप कोशिश करके देखो। प्लीज़...।" न चाहते हुए भी मैंने भरे मन से बताया था। फिर मेरा रोना निकल गया था।

मैं जानती थी कि कोई मेरी घरेलू समस्या को नहीं समझेगा। इसे सच नहीं मानेगा। अफ़सर तो आदमी को आदमी नहीं समझते, मशीन समझते हैं। मेरे सामने सुरिंदर पाल का केस था। सुरिंदर पाल अंगहीन था। पहले उसे लाइट सीट मिली थी। फिर उसके आदेश लैजर ब्रांच के हो गए। लैजर ब्रांच में दस-दस किलो के लैजर थे। सुरिंदर पाल ने लिख कर भी दिया था कि उसकी शारीरिक समर्थता के अनुसार ही उसे काम दिया जाए। वह भारी-भारी लैजर नहीं उठा पाएगा। किसी ने उसकी नहीं सुनी थी। यही कहा था, "तुम्हें तनख्वाह तो पूरी मिलती है न? फिर काम करो।" सुरिंदर पाल ने एक एक करके सभी अफ़सरों को बताया था, "मेरी भर्ती हैंडीकैप्ड के तौर पर हुई है।" उसने अपने दोनों हाथ दिखाए थे। इससे भी अफ़सरों के मन नहीं पसीजे थे। उल्टा सवाल किया था, "जय प्रकाश लंबी छुट्टी पर चला गया। तू ही बता उसकी जगह पर किसके ऑडर करें।"

गोपाल ने उसी मूड में कहा था, "तीन बार के बाद भी हम तुम्हें किस बेस पर रोक सकते हैं। तुम्हें जाना ही होगा। या तुम मेडिकल लीव ले लो।"

मैं अपने कमरे में लौट आई थी। मेरे रोने का उस पर कोई असर नहीं हुआ था। उससे पहली मुलाकात ही आख़िरी मुलाकात बन चली थी। मन किया था कि इस कुत्ती नौकरी से इस्तीफ़ा दे दूँ। क्या करना है यह नौकरी करके। पर घर के खर्चों के बारे में सोचते ही मन बदल गया था। मेरी आधी तनख्वाह तो रोशन और स्वरूप की दवाइयों पर लग जाती थी। मैंने डायरी में दर्ज़ कई नामों पर उड़ती नज़र डाली थी। अग्रवाल साहिब के पास जाने का मन बनाया था। क्या पता गोपाल, अग्रवाल साहिब का कहा मान जाए।

ये एफ.डी. वाले एक दूसरे की बात अवश्य ही मान लेते हैं। मैं अभी कोई फ़ैसला नहीं कर सकी थी कि मुझे किरपाल सिंह ने कहा था, "इस वक्त गोपाल साहिब से बड़ी अप्रोच कोई नहीं हो सकती।" मैंने हरीश से गोपाल की सर्विस बुक मँगवाई थी। उसका बायोडाटा पढ़ा था। उसकी उम्र चौव्वन साल की है। वह क्लर्क से सीधा एस.ओ. बना था। फिर प्रमोशन लेकर डिप्टी कंट्रोलर (वित्त व लेखा) बना। उसकी ए.सी.आर. आउंटस्टैंडिंग थीं। उसके पिता का नाम स्वदेश कुमार वशिष्ठ है। वशिष्ठ पढ़ते ही मुझे थोड़ी सी खुशी हुई थी। तसल्लीनुमा खुशी। बात बन सकती थी। वह राम गोपाल वशिष्ठ है और मैं हरकिरन भारद्वाज। हम दोनों ब्राह्मण हैं। यह बहुत बड़ी साँझ सिद्ध हो सकती थी। पिछले पाँच-छह वर्षों में दफ़्तरों में जात-पात का ज़ोर शोर बढ़ने लगा था। एस.सी., शर्मा, जट्ट और भापों के समीकरण उभरे थे। यह विभाजन उस समय अपने शिखर पर पहुँच गया था जब मदन लाल शर्मा सुपरिंटेंडेंट बनकर इस

दफ़्तर में आया था। उसे परसोनल शाखा में लगाया गया था तो उसने उस ब्रांच में एक भी नान-ब्राह्मण नहीं रहने दिया था। उसने अपनी लॉबी उभारी थी। बात साहब तक भी पहुँची थी। शर्मा का स्पष्टीकरण था, "किस व्यक्ति से क्या काम लेना है, यह मेरी जिम्मेदारी है। यदि आपकी कोई शिकायत होगी तो आपकी जूती होगी और सिर मेरा। ठीक है ना जी?" साहब को उसके शब्दों ने कील लिया था।

शाम को मैंने यही गोटी गोपाल के पाले में फेंकी थी। उसका आधा असर हुआ था। बाकी आधा असर कैसे होना चाहिए था, यह हमेशा मेरे वश में रहा है। फिर गोपाल किस बाग की मूली था। सोने पर सुहागे वाली यह बात साथ आ मिली थी कि अगले हफ़्ते से पठानकोट में शुरू होने वाले टूर प्रोग्राम में मैंने जबरन अपना नाम शामिल करवा लिया था।

हाँ। हाँ।

डलहौजी से वापसी पर।

मेरे बार बार ज़ोर देने पर भी गोपाल मेरे साथ वाली सीट पर नहीं बैठा था। उसने मुझसे अगली सीट ली थी।

मैं खुश थी। दौरा सफल रहा था। गोपाल ने मेरे सामने बैठकर डी.ओ. लैटर लिखा था। जैसा मैं चाहती थी, वैसा किया था। वह तो स्वयं बाज़ार जाकर टाइप भी करवा लाया था। मेरे कहने पर, ज़ोर डालने पर उसने दस्तख़त भी कर दिए थे। मुझे तो बस डायरी नंबर डलवा कर पोस्ट करना था।

हाँ। हाँ।

रानीखेत आकर।

मैंने आगे मुँह करके उससे अपने इस 'पाप' के बारे में फिर पूछा था।

उसने आगे की ओर देखते हुए बताया था, "पाप शाप कुछ नहीं होते। मेरे हिसाब से तो तूने पुण्य वाला काम किया है। घरवालों के प्रति अपने फ़र्ज़ों को निभाने में तूने कोई कोताही नहीं बरती। बी रिलैक्स।"

मैं बाहर की तरफ देखने लगी थी। पहाड़, दरख़्त, पंछी, ताज़ी हवा, हरियाली... मेरे सामने प्रकृति के अजीब नजारे थे। फिर मुझे पता ही नहीं लगा था कि मुझे कब नींद ने आ घेरा था।

मैं गहरी नींद में सो गई थी मानो बहुत रातों से जागती होऊँ।